इकाई 16 घनानंद के काव्य में स्वच्छंद चेतना

इकाई के रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 रीति काव्य परंपरा में घनानंद का महत्व
16.3 घनानंद का प्रेम संबंधी दृष्टिकोण
16.4 भौतिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम में विकास
16.5 घनानंद की प्रेमानुभूति में स्वच्छंदता
16.6 घनानंद का काव्य-कौशल
16.7 घनानंद की काव्य-भाषा
16.8 सारांश
16.9 अभ्यास/प्रश्न

16.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने बिहारी के काव्य का अध्ययन किया। इस इकाई में हम घनानंद के काव्य की विशेषताओं को जानने का प्रयास करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रीतिकाव्य परंपरा में घनानंद का महत्व बता सकेंगे;
- घनानंद के प्रेम संबंधी दृष्टिकोण का अध्ययन कर सकेंगे;
- घनानंद की प्रेमानुभूति में स्वच्छंदता के दर्शन कर सकेंगे;
- घनानंद के काव्य कौशल से परिचित हो सकेंगे; और
- घनानंद की काव्य-भाषा पर विचार कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

घनानंद रीतिकाल के एक विलक्षण कवि हैं। रीतियुग में कविता हृदय की नैसर्गिक अनुभूति का विषय न रह गई थी। वह आश्रयदाताओं के मनोविनोद का साधन-मात्र बन गई थी। कविगण अपनी कवित्व-शक्ति पर विश्वास खोकर 'आचार्य' कहलाने की महत्वाकांक्षा से पीड़ित हो रहे थे। उस युग में घनानंद अपनी पीड़ा से रोते हैं, किराए के आँसू नहीं बहाते। रीतिकाव्य-परंपरा में घनानंद का अपना महत्व है। उनका प्रेम संबंधी दृष्टिकोण रीति कवियों से सर्वथा भिन्न है। उनकी प्रेमानुभूति स्वच्छंद है। इस स्वच्छंद प्रेमानुभूति के कारण उनका काव्य-कौशल और उनकी काव्य-भाषा सर्वथा नयी और सर्जनात्मक दिखाई पड़ती है। आगे हम इन्हीं बातों की विस्तार से चर्चा करते हुए रीतिकाल के विलक्षण कवि घनानंद की विशिष्टताओं को रेखांकित करेंगे।

16.2 रीति काव्य परंपरा में घनानंद का महत्व

रीतिकालीन काव्यादर्श काव्य के बाह्य रूपों को सँवारने-सजाने के ही थे। अनुभूति पक्ष पर ज़ोर नहीं था। अनुप्रासमयी शब्दावली, छंदों में यति-लय का सुष्ठु विधान, दोषों का परिहार आदि गुण श्रेष्ठ कविता के लिए अनिवार्य माने जाते थे। रीतिकालीन कवि साहित्यशास्त्र की बंधी-बँधाई सरिणयों का अबलम्बन लेकर शृंगार-रस का उपस्थापन कर रहे थे। वस्तुतः रीतिकालीन कविता साहित्यशास्त्र की रूढ़ियों पर अत्यधिक आश्रित और स्रष्टा के व्यक्तित्व के तिरोधान की कविता है। उसमें आँखों पर कम, कानों पर ज्यादा भरोसा किया गया है। इसके विपरीत, घनानंद ने स्वीकार्य अनुभूतियों पर विश्वास किया और अपने हृदय की भोगी हुई पीड़ा को अपनी कबिताओं में रूपायित किया। वे ऐसे लोगों पर दया प्रकट करते हैं जो शास्त्र या बुद्धि की आँखों से प्रेम के हर्ष-विषाद का अनुमान किया करते हैं। प्रेमानुभूति की साक्षी तो उनकी ही आँखें हो सकती हैं जिनके हृदय में चाह की मीठी पीर

उठती हो। रीति कवि भावों को बुद्धिगम्य समझकर उसी से उन्हें काव्य निबद्ध करते थे। घनानंद ने सच्ची अनुभूति को बुद्धि से परे सिद्ध किया है -

जौ लौं जागै न भूल, तौ लौं सोवै सुरति-सुख।
वही होय अनुकूल, तौर भूलै सुख-सुधि सवै।।

प्रेमानुभूति में बुद्धि दासी है और रीझ पटरानी, तत्व का बोध 'बौरानि' में ही होता है। घनानंद बुद्धिवादी कवियों के प्रेम-कथन को नीरस-मंथन के समान निष्फल बताते हैं। उन्हें वाणी के रहस्य से अनभिज्ञ, ठंडे हृदय के तथा जड़ कहा है। वे लोग कृत्रिम प्रेम का निर्वाह करते हैं। उनसे कवि का मेल नहीं हो सकता -

बात के देसतें दूरि परें जड़ता नियरे सियरे हिय दाहैं।
चित्र की आँखिन लीने विचित्र महारस रूप सवाद सराहैं।
नेह कथैं, सठ नीर मथें, हठ कै कठप्रेम को नेम निबाहैं।
क्यों घनआनंद भीजै सुजाननि यौं अमिले मिलिबो फिरि चाहैं।।

16.3 घनानंद का प्रेम संबंधी दृष्टिकोण

घनानंद मूलतः एक प्रेमी कवि थे। जिस युग में घनानंद ने लेखनी उठायी, उस युग की प्रवृत्ति भी शृंगारिक थी। उस युग के अधिकांश कवियों ने न केवल सैद्धांतिक धरातल पर शृंगार की रसराजता घोषित की, बल्कि व्यावहारिक जीवन में भी इसी के अंग-उपांगों की उपासना की। फिर भी, घनानंद और उनके समसामयिक अन्य कवियों में बड़ा भारी अंतर है जिसकी चर्चा अभी-अभी की गई है। बहरहाल डॉ0 नगेन्द्र ने रीतिमार्गीय प्रेम शृंगार की चार मुख्य विशेषताएँ बताई हैं। रीतिमार्गीय प्रेम शृंगार का मूलाधार रसिकता है प्रेम नहीं। वह रसिकता शुद्ध ऐंद्रिक अतएव उपभोग प्रधान है। इसीलिए वासना को अपने प्राकृतिक रूप में ग्रहण करते हुए उसी की तुष्टि को निश्छल रीति से प्रेम रूप में स्वीकार किया गया है। उसको न आध्यात्मिक रूप देने का प्रयत्न किया गया, न उदात्त और परिष्कृत करने का। यह शृंगार उपभोग प्रधान एवं गार्हस्थिक है। यह एक ओर बाज़ारी इश्क से भिन्न है दूसरी ओर रोमानी प्रेम की साहसिकता भी प्रायः उसमें नहीं मिलती। इसीलिए इसमें तरलता और छटा अधिक है, आत्मा की पुकार और तीव्रता कम।

घनानंद के प्रेम में गांभीर्य हैं। बिहारी की तरह वे प्रेम को चौगान का खेल नहीं मानते बल्कि वे प्रेम को एक सीधा स्नेहपूर्ण मार्ग मानते हैं जहाँ तनिक भी चतुराई के लिए स्थान नहीं है। प्रेम के पथ पर वे ही सच्चे लोग चल सकते हैं जो अपना सब कुछ गंवाने के लिए तैयार होते हैं। जो कपटी हैं, बुरे आचरण वाले हैं वे इस रास्ते पर निर्भय होकर नहीं चल सकते। प्रेम की बस यही एक डगर है, दूसरी कोई नहीं -

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलें तजि आपनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरी आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

इन पंक्तियों में प्रेम के सत्यनिष्ठ मार्ग के साथ-साथ प्रेमी की निष्ठुरता का भी जिक्र आया है जो प्रेम का मन तो हर लेता है परंतु अपना मन देने में संकोच करता है। यहाँ प्रिय के समक्ष प्रेम का आदर्श रखकर कवि दिखा रहा है कि वह इसका पालन नहीं कर रहे हैं। प्रेम का मार्ग तो सीधा और सरल है। इसपर अज्ञानी से अज्ञानी व्यक्ति भी चल सकता है।

असल में घनानंद का प्रेम भावात्मक है, शारीरिक नहीं। संयोग में शरीर सहवास की चेष्टाओं का तथा वियोग में उसके हाव-भाव का वर्णन कवि ने नहीं किया है। अन्यत्र हृदय के भावों का ही विश्लेषण किया है। प्रिय के बिछुड़ने पर तथा मिलन पर प्रेमी शांति का अनुभव नहीं करता - **बिछुरै मिलै प्रीतम सांति न मानै।** कभी दैवगति से स्वप्न की भाँति प्रिय-प्रियतमा का मिलन भी होता है तो मनोरथों की भीड़ भर जाती है। फलतः मिलकर भी मिलाप नहीं होता -

कबहूँ जौ दई गति सौं सपनौ सो लखौं तो मनोरथ भीर भरै।
मिलिहू ने मिलाप मिलै तन कौ उर की गति क्यों करि ब्यौरि परै।।

प्रिय के रूप का साक्षात्कार कर लेने से भी प्रेमी प्रसन्न नहीं होता। भगवान की छटा देखकर जैसे भक्त आश्चर्यचकित होता है उसी प्रकार प्रेमी की बुद्धि आश्चर्यचकित हो जाती है। मति की गति रुक जाती है, कहने का सामर्थ्य नहीं रहता -

क्यों करि आनंदघन लहियै संजोग सुख,
ललसानि भीजि रीझि बातै न परै कहीं।

रूप दर्शन के समय बाह्य इंद्रियाँ संतुष्ट होकर हर्ष लाभ करें, इसके पूर्व ही हृदय विविध भावों का उद्‌गम, दुख का घूँघट उठा देता है। प्राण उसी में घुटने लगते हैं।

प्रियतम का साक्षात्कार कर प्रिय बेसुध हो जाता है। घनानंद के सौंदर्य चित्रण में भी एक गरिमा है जो पाठक को रस विभोर कर देता है :

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलन मैं छबि फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल-कंठ बनी जल जावलि ह्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वैं।।

प्रियतम का गोरा मुख अत्यंत सुंदर लग रहा है, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें मानो कानों को स्पर्श करना चाहती हों। जब वह हँसती है तो उससे सौंदर्य रूपी फूल की वर्षा होती है और वह सीधे हृदय पर गिरती है। उसकी लटें गालों से खेलती प्रतीत होती हैं। उसके गले में मोतियों की माला शोभायमान है। उसके शरीर का प्रत्येक अंग जगमगा रहा है, लगता है अभी सौंदर्य धरा पर टपक पड़ेगा। सौंदर्य का इतना सहज और यथार्थ चित्रण रीतिकाल के दूसरे कवि में नहीं मिल सकता।

संयोगकाल में घनानंद की अनुभूति रीतिमार्गी कवियों की भाँति कुंठित नहीं होती। वह और तीक्ष्णतर होती जाती है। उसका कारण प्रेम भावना की भावात्मकता है। वियोग में और लोग शरीर-संयोग के सुखों का स्मरण करते हैं किंतु घनानंद आंतरिक पीड़ा की विविध अभिव्यक्ति करते हैं। यहाँ मौन में आकुल प्राण पुकारते हैं -

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं आरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन, हियरा तें न टरति है।
यहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनंदनिधान प्रानप्रीतम सुजानजू की,
सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करती है।।

यहाँ प्रिय की मुस्कान, मधुर वाणी, ललक युक्त मुद्रा की स्मृति का चित्रण हुआ है। प्रिय का यह रूप उसके हृदय में बसा हुआ है। उसकी बाँसुरी बजाने की मुद्रा, उसकी हँसी हृदय से चाहकर भी हटती नहीं। उसकी चतुराई को देखने की कला, उसका रंगीलापन क्षण मात्र को भी भुलाया नहीं जाता। आनंद प्रदान करने वाली प्राण प्रियतम सुजान की याद आने से प्रिय अपने होश हवास खो बैठता है। प्रेम के प्रति यह पूर्ण समर्पण ही घनानंद की विशिष्टता है।

रीतिकाव्य का प्रेम सामाजिक परंपराओं से मुक्त नहीं था। लेकिन घनानंद ने सामाजिक बंधनों की लेशमात्र भी अपेक्षा नहीं की। उन्होंने वेश्या से प्रेम किया। उनका प्रेम गार्हस्थिक नहीं है। उसमें समाज की मर्यादा नहीं है, जीवन की स्वच्छंदता है। घनानंद प्रेम-व्यापार में अंतर्मुख थे, जबकि रीतिमार्गी कवि बहिर्मुख। घनानंद मौन होकर विरह-व्यथा सहते हैं। ठाकुर ने भी प्रेमानुभूति के हृदय में ही गुप्त रहने की बात बार-बार कही है। नायिका-भेद रीतिकाल की सर्वोपरि विशेषता थी। किंतु घनानंद ने नायिका के

भेदों में अपनी काव्य-सरस्वती को नहीं फँसाया। प्रेमी-प्रेमिकाओं के भावों का विश्लेषण ही इनका विषय है। रीतिकाव्य में सम प्रेम वर्णित हुआ है। किंतु घनानंद ने प्रेम की उदात्तता तथा उच्चता व्यक्त करने के लिए विषम प्रेम को ही अपनाया है -

अधिक बधिक तें सुजान, रीति रावरी है,
कपट-चुगौ दे फिरि निपट करौ बुरी।
गुननि पकरि लै, निपाँख करि छारि देहु,
मरहि न जियै, महा विषम दया-छुरी।
हौं न जानौं, कौन धौं ही यामैं सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यौं परति प्यारे अंतरकथा दुरी।
कैसें आसा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग,
बनक-निकाई घनआनँद नई जुरी॥

घनानंद का प्रेम एकतरफा है, इसलिए उसमें पीड़ा है। अब ऊपर उद्धृत पद ही देखिए। यहाँ प्रिय की तुलना एक बहेलिए से की गई है जो कपट करता है। घनानंद इसे बड़ी बुरी बात मानते हैं। प्रिय ने गुणों के जाल से पकड़कर, विरही को पंखहीन कर दिया है। अब वह न मर पाती है न जी पाती है। पता नहीं पीड़ा पहुँचाने से तुम्हें क्या मिलता है? तुम मेरा हृदय का हाल क्यों नहीं पूछते। बहेलिया तो पक्षी को मार देता है पर आपने तो न मारा न ही जिंदा रहने दिया। आपकी यह अंतरकथा कुछ समझ में नहीं आती। पक्षी आकर्षक चारे को देखकर पेड़ पर कैसे बैठा रह सकता है। इस आसरे पर तो वह बैठा नहीं रह सकता कि प्रियतम स्वयं आएँगे।

रीतिमार्गी कवियों में शृंगार रस के संयोग पक्ष ने अधिक विस्तार पाया है। वियोग का उन्होंने थोड़ा-बहुत वर्णन किया है, पर वह मार्मिक नहीं है। घनानंद के यहाँ तो वियोग ही वियोग है। संयोग का भी वर्णन किया है तो उसमें वियोग विद्यमान रहता है। उस विरह में रहस्य भावना का भी अंश रहता है। रीतिमुक्त कवियों में घनानंद की तरह आलम के यहाँ भी वियोग प्राचुर्य दृष्टिगत होता है।

आचार्यों ने संयोग शृंगार में अवसाद का वर्णन निषिद्ध माना है - **'संयोग आलस्योग्रयौ जुगुप्साः वर्ज्याः'** (रसतरंगिणी) पर घनानंद की स्वच्छंद प्रवृत्ति इसे नहीं मानती। प्रिय बहुत दिनों के विरह के बाद मिला है। विरही को निश्चित नहीं होता कि यह संयोग है या छल। इस प्रकार मिलने पर भी कुशल 'अनमिले' की ही है -

देखें अनदेखनि-प्रतीति पेखियति प्यारे,
नीठ न परत जानि दीठि किंधौं छल है।
दीपति-समीप की बिछोह माहिं जोहियत,
आरसी-दरस लौं परम ध्यान जल है।
निपट अटपटी दसा सों चटपटी-बीच,
बूड़त विचारो जीव थाह क्यौं हूँ न लहै।
कहा कहौं आनँद के घन जानराय हौ जू,
मिलेहूँ तिहारे अनमिले की कुसल है।

जब सुजान का संयोग होता है तो बुद्धि आश्चर्य में डूब जाती है। फलतः प्रिय का पूर्ण दर्शन नहीं हो पाता। संयोग-काल स्वप्न-सा टल जाता है। उसके बाद विरह आता है जो सौ गुना बढ़कर हृदय को पीड़ित करता रहता है। वस्तुतः घनानंद ने संयोग में वियोग की अभिन्नता का ही नहीं समकालीनता का भी अनुभव किया है। अतः वियोग प्रत्येक अवस्था में बना रहता है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि घनानंद का प्रेम गार्हस्थिक नहीं है। बादशाह मुहम्मदशाह के दरबार की वेश्या सुजान के साथ उसका प्रेम होता है। पर इसमें स्थिरता चरम कोटि की दिखाई गई है। प्राणांत तक प्रेमी प्रेम को नहीं छोड़ना चाहता। मरते समय भी प्राण सुजान का संदेश लेकर ही बाहर जाना चाहते हैं। रीतिमार्गी प्रेम में जो तरलता और छटा है उसके स्थान पर यहाँ तीव्रता और आत्मा की पुकार मिलती है। जब प्रिया का मिलन होता है तो लाखों प्राण न्योछावर करने की अभिलाषा इतनी तीव्र हो जाती है कि वह संयोग के हर्ष की जगह विषाद उत्पन्न करती है। यह सब आसक्ति की तीव्रता के कारण है। वियोग में तीव्रता और अधिक मिलती है। वेदना की मार्मिकता और मौन सहिष्णुता उसकी तीव्रता का ही परिचायक है -

अंतर हौं किधौ अंतर हौं, दृग फारि फिरौं कि अभागिन भीरौं।
आगि जरौं, अकि पानी परौं, अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।
जौ घनआनंद ऐसी रुची तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें धरती मैं धसौं कि अकासहि चीरौं।।

वस्तुतः घनानंद की प्रेम-भावना व्यथा प्रधान है। उस व्यथा का स्वरूप आंतरिक है। प्रेमी एक प्रकार की बेबसी में फँसा हुआ दृष्टिगत होता है। प्रिय की प्रीति जो थाती की तरह छाती पर विराजमान थी उसी का ध्यान कर विरही के नेत्र आँसू बरसाने लगे। तब कवि की अंतश्चेतना से ऐसे स्वर निकलने लगे जो सचमुच व्यथित प्राणी की पुकार हैं -

तब तौ छबि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे।
हित पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महा दुख दोष भरे।
घनआनँद मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे।।

कहना न होगा कि उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त प्रेम रीति कवियों द्वारा वर्णित प्रेम से भिन्न हैं। घनानंद की दृष्टि में रसिकता वेदना द्वारा परिलक्षित होती है। व्यथित हृदय की पुकार ही श्रेष्ठ कविता है। इस विषय में वे भवभूति तथा शेली के समान हैं। यदि रोना नहीं आता हो तो गाना भी रोने के समान है। गोपियों की सिसक और उनकी कसक जब तक हृदय में नहीं आई तब तक रसिक कहलाना व्यर्थ है। रसिकता कुछ और ही चीज़ है -

गोपिन की सिसक कसक जौ न आई मन
रसिक कहाए कहा रस कछु औरई।

इस व्यथा-प्रधान दृष्टि के कारण ही कवि ने संयोग में भी वियोग के दर्शन किए हैं।

16.4 भौतिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम में विकास

सर्वविदित है कि घनानंद बादशाह मुहम्मदशाह के मीर-मुंशी थे। इनका मुहम्मदशाह के दरबार में आने-जाने वाली एक वेश्या 'सुजान' से प्रेम था। दरबारियों के प्रपंच में आकर बादशाह ने उन्हें देश-निकाला दे दिया। घनानंद ने दिल्ली छोड़ते समय चाहा कि सुजान भी उनके साथ चले। लेकिन वह उनके साथ न जा सकी। घनानंद को इससे बड़ी ठेस लगी, सांसारिकता के प्रति उनके मन में विरक्ति हो गई और उन्होंने वृंदावन जाकर निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। पर अपना सर्वस्व त्यागकर भी घनानंद सुजान का नाम न त्याग सके। प्रेम का धरातल बदल गया, लेकिन आलम्बन न बदला। अपनी प्रिया के नाम को ही उन्होंने आराध्य का नाम भी बना लिया और उसके विरह में तन्मय होकर कीर्त्तन करने लगे।

घनानंद की दृष्टि में मानवीय प्रेम ईश्वरीय प्रेम का ही लघुतम अंश है। जिस प्रेम-समुद्र में राधा और कृष्ण विवश होकर स्नान-केलि करते हैं उसी की तरल तरंग से कोई बिंदु छूटकर लोक में आ गया है। वही प्रेम है। इसकी चरम परिणति प्रेमी और प्रिय का अभेद है। इसकी पदवी ज्ञान से भी ऊँची है। भूलने से इस पंथ पर चलते हैं, सुधि से थक जाते हैं। इसका मार्ग अत्यंत सरल-सीधा है। 'सयानप का बाँक' यहाँ नहीं होता। सीधे-सरल व्यक्ति इसका पार पा जाते हैं, कपटी झिझकते रहते हैं। 'प्रेम पद्धति' में इसका स्वरूप परिचय देते हुए कवि ने लिखा है कि प्रेम का सर्वोत्तम अधिष्ठान गोपिकाएँ हैं। गोपिकाओं ने अपने प्रबल प्रेम का ओज इससे प्रकट कर दिया है कि भगवान श्रीकृष्ण भी उनके आगे नाचते हैं। प्रेम साधना का सर्वोत्तम स्थान ब्रज है। ब्रज-रज के स्पर्श से प्रेम-तत्व का लाभ अनायास ही हो जाता है। प्रेम का रूप अमल और अपूर्व होता है। इसकी थाह लेने में मन, बुद्धि तथा विचार थक जाते हैं।

घनानंद की प्रेम-भावना में अतींद्रिय सौंदर्य के रहस्यमय संकेत विद्यमान हैं। प्रेम का प्रारंभिक रूप शारीरिक है। रूप सौंदर्य पर इंद्रियों की रीझ, विस्मय आदि के भाव अनुभूत हुए हैं। पर इसका आगे भावना में विकास हुआ है। प्रिय भले ही नाम से राधाकृष्ण हो पर वे स्वभाव में 'आनंद के घन' तथा 'सुजान' है। बादलों की तरह ही प्रिय सर्वत्र व्याप्त है। प्राणों की वह गति है। बुद्धि, स्मृति, नेत्र और

वाणी में उसका वास है। प्रिय के गुण गाते-गाते बुद्धि उसी में उलझ जाती है। प्रिय आँखों से दिखाई नहीं देते। यद्यपि सब जगह वह छाये हुए हैं। उन्हें पाकर प्रेमी खोये से हो जाते हैं। एक ही बास बसे हैं फिर भी दोनों को एक-दूसरे का परिचय नहीं हो पाया। इन उक्तियों में ब्रह्म की व्यापकता तथा उसे प्रेम द्वारा प्राप्त करने की जीव की अभिलाषा का रहस्य प्रतीत होता है। प्रिय और प्रेमी के साथ रहने का अर्थ जीव और ब्रह्म का शरीर में होने वाला एकाश्रय सहवास प्रतीत होता है-

भले ही रसीले अरसील सुनि हूजिए व, गुननि तिहारे उरझयौं है मन गाय गाय।
काननि सुनो है तैसे आँखिन हूँ देखे जाते, दीखत नहीं औ सब ठाँम्वर हैं छाय छाय।
ऐसे घन आनंद अचभे सों भरे हौं भारी, खोए से रहत जित तित तिम्हें पाय पाय।
एक बस बसे सदा बालम बिसासी पै न, भई क्यों चिहनारि कहूँ हमैं तुम्हें हाय हाय।।

अपनी कृति 'प्रीति-पावस' में घनानंद लिखते हैं कि आनंदघन के निकट सदा प्रेमानंद का पावस ही बना रहता है। वहाँ चाहों की वर्षा होती है। वह ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है तृषा की अग्नि त्यों-त्यों प्रचंड होती जाती है। 'इश्कलता' में फारसी ढंग से अनेक प्रेमापलंभ प्रकट किए गए हैं। इसके अंत में कवि कहता है कि आनंद के घन छैल की छवि ध्यान धर देखेगा वही 'इश्कलता' के अर्थ को समझ सकेगा। इसे जो चित्त देकर बाँचेगा उसे वृंदावन के धाम-सुख की उपलब्धि होगी -

आनंद के घन छैल की छवि निरखै धरि ध्यान।
इश्कलता के अर्थ को समझै चतुर सुजान।।
इश्कलता ब्रजचंद को जो बाँचै दै चित्त।
वृंदावन सुखधाम सो लहै नित्त ही नित्त।।

इससे स्पष्ट है कि कवि के प्रेम का विषय कोई संसारी प्राणी नहीं परमेश्वर है।

घनानंद ने लौकिक प्रेमलीला को अलौकिक प्रेमलीला का कण कहा है, किंतु उन्होंने इसे कृष्ण-प्रेम में छिपा रखा है। आचार्यों ने भी कृष्ण की प्रेम-लक्षणा भक्ति का विकास लौकिक क्रीड़ा से सम्बद्ध रखकर किया। इसलिए सूफियों की 'प्रेम की पीर' को उसमें लय हो जाने का अवसर मिल गया। घनानंद ने सुजान के प्रति अपने प्रेम (इश्कमजाजी) को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेम-लीला (इश्क हकीकी) का क्षुद्र अंश कहा है -

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै,
विचार वापुरो हहरि बार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एकरस है बिवस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैं देखें सरसायौ है।
ताकी काऊ तरल तरंग-संग छूटयौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घन आनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसे मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।।

संसार में फैला प्रेम-व्यापार उसी प्रेम-महोदधि का एक कण है जिसमें राधा-कृष्ण जल केलि किया करते हैं। वही कण घनानंद और सुजान के प्रेम में भी लगा हुआ है। सूफियों की भाँति घनानंद ने लौकिक प्रेम में कई स्थानों पर ब्रह्म प्रेम का आभास भी दिया है -

उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक लौं तकियै अब तौ।
पाऊँ कहाँ हरि हाय, तुम्हें धरनी मैं धसौं कि अकासहि चीरौ ।।

में सूफियों का ब्रह्म-विरह व्यक्त हुआ है। इसलिए घनानंद को रहस्योन्मुखी प्रेमी कवि कहना ही उचित होगा।

ध्यातव्य है कि घनानंद की प्रेमानुभूति का स्वरूप फारसी कवियों की तरह लौकिक ही है। राधा और कृष्ण तो तत्कालीन काव्य-परंपरा के कारण काव्य में गृहीत हुए हैं। वस्तुतः सखी सम्प्रदाय, फारसी साहित्य तथा सूफी कवि इन तीनों की रहस्य भावना से कवि ने प्रेरणा ली है। इसके अतिरिक्त, इनकी व्यक्तिगत भावना भी इसमें प्रकट हुई है। उपमानों को प्रतीक के रूप में उपस्थित कर रहस्य भावना

का समावेश किया गया है। घनानंद ने ऐसा ही किया है। प्रतीक पद्धति अपनाने के कारण इनकी रहस्य शैली भारतीय शैली की अपेक्षा फारसी शैली के निकट है। लेकिन इन्होंने इसकी ज्यो की त्यों अनुकृति नहीं की। फारसी का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी घनानंद ने भारतीय रंग का सर्वथा त्याग नहीं किया है। फारसी काव्य में जहाँ विकलता आशिक (नायक) की दिखाई जाती है, वहाँ घनानंद की नायिका ही प्रिय की निठुराई से पीड़ित है।

जीव की बात जनाइए क्यों करि जान कहाय अजाननि आगौ।
तीरनि मारि के पीर न पावत एक सो मानत दोइबो रागौ।
ऐसी बनी 'घनआनँद' आनि जु आन न सूझत सो किन त्यागौ।
प्रान मरैंगे भरैंगे बिथा पै अमोही सों काहू को मोह न लागौ।।

16.5 घनानंद की प्रेमानुभूति में स्वच्छंदता

घनानंद अपने मनोवेगों के प्रवाह में बहकर कविता लिखा करते थे। इनकी दृष्टि में काव्यशास्त्र के नियम-उपिनयम नहीं रहते थे। इसलिए इनके काव्य में प्रेम की जीवनगत स्वच्छंदता तथा काव्यगत स्वच्छंदता दोनों के दर्शन होते हैं। घनानंद की दृष्टि प्रेमभाव की अनुभूति पर अधिक रहती थी। उसका वे काव्य में चित्रण करते थे। फलतः इनकी अंतर्दृष्टि प्रेमानुभूति को पहचानने में बड़ी व्यापक और सूक्ष्म हो गई। घनानंद का प्रेम केवल नारी के स्थूल सौंदर्य तक ही सीमित न रहा। वह ईश्वर पर्यन्त ऊँचा उठा। इनकी रचनाओं में अश्लील मुद्राओं व अश्लील चेष्टाओं के वर्णन नहीं मिलते। संयोग में मनोदशाओं के विविध रूपों का चित्रण किया गया है। घनानंद के यहाँ प्रेम का बाह्य पक्ष इतना प्रबल नहीं है जितना आंतरिक पक्ष क्योंकि उनकी दृष्टि ही आंतरिक है।

कंत रमै उर-अंतर में सु लहै नहीं क्यौं सुखरासि निरंतर।
दंत रहैं गहैं आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर।
जो दुख देखति हौं घनआनँद रैन-दिना बिना जान सुततंर।
जानै वेई दिन-राति, बखाने तें जाय परै दिन-राति को अंतर।।

प्रिय हृदय में बसे हुए हैं फिर भी विरही को सुख का अनुभव नहीं हो रहा। विरही की विरह-व्यथा देखकर वे भी दाँतों तले उंगली दबाते हैं जो विरह-वेदना की आँच में पके हुए हैं। असल में स्वच्छंद मनोवृत्ति वाले प्रिय के विरह में जो दुख मैं रात-दिन सहन कर रही हूँ उसे रात-दिन ही समझ सकते हैं, दूसरा कोई उसे समझ नहीं सकता। अगर कोई इस विरह को बताने की कोशिश करे भी तो वह वैसा ही होगा जैसा दिन और रात में अंतर होता है। विरही विरह से पीड़ित है परंतु उसके विरह को वह क्या कोई भी व्यक्त नहीं कर सकता। इसे वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह अनुभूति हृदय की है और इसे हृदय ही अनुभव कर सकता है। इसके वर्णन के लिए कोई शब्द नहीं बने हैं। चुपचाप सहते रहो, पर मौन रहो - यही तो घनानंद के प्रेम का आदर्श है।

रीतिमार्गी कवियों के प्रेम चित्रण में जीवन की अनुभूति नहीं है। वे प्रेमी, भक्त और सबसे परे कवि और आचार्य होते थे। इसलिए स्वच्छंद प्रेम के ऐकांतिक रूप का अपने काव्य में चित्रण नहीं कर सके। चूँकि प्रेम इनकी अनुभूति नहीं थी, इसलिए न तो उसमें मनोवेगों का आवेग मिलता है, न जीवनगत स्वच्छंदता ही प्राप्त होती है। दूती, परिजन, सखी आदि से घिरी नायिका के हृदय की अंतर्दशाओं का उन्हें परिचय नहीं था। दूसरे, दृष्टि की व्यापकता के अभाव में प्रेम केवल नायिका का तक ही सीमित रहता है। उसमें किसी प्रकार की उच्चता के दर्शन नहीं होते। रहस्य भावना का भी उसमें अभाव दिखाई पड़ता है। रीतिमार्गी कवियों का प्रेम तो राधा-कृष्ण के पास पहुँचकर भी अपनी स्थूलता नहीं छोड़ता।

घनानंद ने प्रेम व्यापार के कृत्रिम रूपों का त्याग किया है। उनकी चेतना विरह और मिलन दोनों में प्रेमियों के हृदयों के अंतस्थलों को उद्घाटित करने में ही लगी रहती है। घनानंद का प्रेमी तो स्वयं ही अपनी प्रेम भावना को नहीं पहचान पाता। वह कहे किससे? यहाँ तो **'बेझत बूझत बौराई सूझे'** है।

रीतिमार्गी कवि बुद्धि के बल से ही भाव का अनुमान करते थे और उसी के बल से प्रेम के बाह्य रूप विधान का संधान करते थे। घनानंद ने प्रेम को हृदय की शुद्ध, निश्छल भावधारा माना है, बुद्धि का उसमें गौण स्थान है। वे हृदय को प्रमाण मानते हैं। रीतिमार्गी कवि सखी, दूती आदि द्वारा प्रेम निवेदन

करते हैं। वे प्रेम निवेदन की सामाजिक शास्त्रीयता की रक्षा करते हैं। किंतु घनानंद अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण उसकी उपेक्षा करते हैं। प्रेमानुभूति कवि की व्यक्तिगत अनुभूति पर आधारित है, इसलिए उसे वह स्वयं ही प्रेमी बनकर प्रकट करता है।

रीतिमार्गी कवि संयोग में अंतर्मुखी तथा वियोग में बहिर्मुखी हो जाते हैं। इसके विपरीत, घनानंद संयोग में तो अंतर्मुखी रहते ही हैं, वियोग में वह अंतर्मुखता और बढ़ जाती है। वे ऊहात्मक शैली में विरह-व्यथा की नाप-जोख नहीं करते। उनका वियोग बड़ा व्यापक है। वह संयोग में भी बना रहता है। रीतिमार्गी लोकानुभूति का वर्णन करते थे, किंतु घनानंद ने आत्मानुभूति को काव्य का विषय बनाया है। घनानंद के स्वच्छंद प्रेम का चरम उत्कर्ष विषमता में ही निष्पन्न होता है, जबकि रीतिमार्गियों ने सम प्रेम को अपनाया है।

16.6 घनानंद का काव्य-कौशल

घनानंद की कविता में अभिधा कम लक्षणा और व्यंजना अधिक है। उनकी कविता के मर्म तक पहुँचने के लिए उसके लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ तक पहुँचना अनिवार्य है। अपनी कविता की विशिष्टता स्वयं घनानंद ने इस सवैये में व्यक्त की है -

उर-भौन में मौन को घूघँट कै दुरि बैठी बिराजति बात बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन' सों सु लसै हुलसै रसरूप मनी।
रसना-अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी।
घनआनँद बूझनि-अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान धनी।।

इस सवैये में घनानंद ने अपनी कविता की विशिष्टता बताई है। घनानंद कहते हैं कि मेरी कविता में काफी कुछ मौन है जिसे समझने के लिए हृदय के अंदर प्रविष्ट करना होगा क्योंकि कविता का वास वहीं है। इसीलिए वे कहते हैं कि कविता हृदय के भवन में मौन का घूँघट डाल कर अपने को छिपाए हुए है। ऐसा नहीं कि इसमें भौतिक जगत का चित्रण नहीं हुआ पर जो भी है वह कोमल और सुंदर है। इसमें शब्दों का नहीं बल्कि उसके अर्थ का महत्व है। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ इसका गुण है। इसमें अलंकार भी है। इसमें रस भी है। यह कविता जीभ और कान तक ही जाकर नहीं रुक जाती बल्कि कान की गली से होती हुई यह चित्र हृदय की शैय्या तक पहुँचती है। इस कविता को कोई सहृदय व्यक्ति ही समझ सकता है। यहाँ घनानंद स्पष्ट रूप में कहना चाहते हैं कविता शब्दों का खेल नहीं है। भावानुभूति उसकी प्रमुख विशेषता है जिसका आनंद सहृदय ही ले सकता है।

घनानंद की काव्य-शैली के दो भाग किए जा सकते है - वक्र तथा ऋजु। भक्ति संबंधी रचनाओं में ऋजु तथा रसात्मक रचनाओं में वक्र शैली का प्रयोग किया गया है। ऋजु शैली में संश्लिष्ट रूप में संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया गया है जो वक्र शैली में नहीं मिलता। भावों की मार्मिकता तथा गंभीर प्रभावशीलता वक्र शैली के गुण हैं। वक्रता का आधार लक्षक भाषा है। वक्र शैली के दोनों भेद - संश्लिष्ट और विश्लिष्ट घनानंद की काव्य-कला में दिखाई पड़ते हैं। जहाँ विचारों की प्रचुरता है, वहाँ कवि कम-से-कम शब्दों में उन्हें व्यक्त करना चाहता है। इन स्थलों में शैली संश्लिष्ट हो गई है। संश्लिष्टता भाषा की उतनी नहीं है जितनी विचारों की। ऐसी रचनाएँ अपेक्षाकृत कठिन भी हैं। अनुप्रासादि शब्दालंकारों का लोभ भाषा को और क्लिष्ट तथा संश्लिष्ट कर देता है। जैसे -

सोभा-लोभ-लागि अंग-रंग-रंग प्रीति पाग,
जागि-जागि नेंको न निमेष टेकतें टरी।
बोलनि, चितौनि, चारु ढोलनि, कपोलनि सों,
चाहि चाहि रंक लों सु संपति हिये धारी।।

जहाँ इस प्रकार का कोई कारण क्लिष्टता का नहीं है वहाँ सरल भाषा में मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति हुई है। शैली की मार्मिकता जितनी इस सरल-साधारण रूप में व्यक्त हुई है उतनी संश्लिष्ट रूप में नहीं। संश्लिष्ट शैली रीति परंपरा का अवशेष जैसी लगती है। वह बुद्धि को जगाकर विचारों की गहराई में पाठक को व्यस्त करती है। पर साधारण शैली हृदय को सीधा स्पर्श करती है और उसे ऐसे भावों में डुबा देती है जो परिचित से हैं। जैसे -

लैही रहे हो सदा मन और को दैवो न जानत जान दुलारे।
देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख त्यागे सँकोच र सोच सुखारे।
कैसो संजोग बियोग धौं आटि फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु धरीक हू आप तें न्यारे।

घनानंद की शैली का आंतिरक रूप भाव-प्रधान है, विभाव-प्रधान या वस्तु-प्रधान नहीं। भावों तथा हृदय की अंतर्दशाओं का प्रत्यक्ष वर्णन है। इनमें रमणीयता तथा अनुभूति योग्यता लक्षणा द्वारा उत्पन्न होती है। अभिलाषा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है -

रस सागर नागर स्याम लखौं अभिलाखनि धार मँझार बहौं।
सुन सूझत धीर को तीरे कहूँ पचिहार कै लाज सिवार गहौं।

यहाँ अभिलाष का भाव 'धार' उपमान का, 'धीर' भाव का 'तीर' तथा लज्जा भाव 'सिवार' का रूप धारण कर प्रत्यक्ष हो जाते हैं। फलतः अभिलाषा-मग्न व्यक्ति का जलमग्न व्यक्ति के समान चित्र बन जाता है।

घनानंद की शैली में रहस्य भावना की भी झलक कहीं-कहीं प्राप्त होती है। प्रस्तुत के भाव या व्यापारों के वर्णन में परमेश्वर की व्यापकता, अंतर्यामिता, एकता आदि गुणों के संकेत किए गए हैं। प्रिय आनंदघन के दर्शन के समय प्रेमी उनके तेज से हतप्रभ होकर उन्हें पू.. नहीं देख पाता। घन आए तो साथ ही बिजली की कौंध भी आई जिसने प्रिय को देखने ही नहीं दिया। बाद में बुद्धि को संदेह होने लगा कि वे आनंदघन सचमुच हैं भी या नहीं, -

चेतक रूप रसीले सुजान दई बहुतै दिन नैकु दिखाई।
कौंध में चौंध भरे चख हाय कहा कहौं हेरनि ऐसे हिराई।
बातें बिलाय गई रसना पै, हियो उमग्यौ, कहि एकौ न आई।
साँच कि संभ्रम हौं घन आनंद सोचनि ही मति जाति समाई।

यहाँ प्रस्तुत वर्ण्य-भाव प्रिया-मिलन है, पर वह घन के अप्रस्तुत व्यापारों द्वारा व्यक्त किया गया है। अंतिम पंक्ति में परमेश्वर की सत्ता के अस्ति-नास्ति के संदेहों की ओर भी संकेत किया गया जान पड़ता है। इसकी छाया में ऊपर की तीनों पंक्तियों का अर्थ परमेश्वर को प्रिय मानकर किया जा सकता है।

घनानंद की यह रहस्य शैली कबीर आदि ज्ञानमार्गी संतों की रहस्य शैली से भिन्न है। सतही तौर पर सूफी काव्य-परंपरा से इसका मेल हो सकता है पर सूफियों का अध्यात्म धर्म दर्शन से जुड़ा है और अध्यात्म सर्वसाधारण दार्शनिक भावना है। वस्तुतः घनानंद सखी सम्प्रदाय के उपासक थे जिसमे रहस्य की भावना नियत रूप से वर्तमान रहती है।

वक्रता घनानंद की शैली की प्रमुख विशेषता है। आचार्य कुंतक का विश्वास है कि साधारण तरीके से किसी प्रकार के रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वह वक्रोक्ति से संभव है। हिंदी में जहाँ अनुभूति थी वहाँ चमत्कार नहीं था, चमत्कार था तो अनुभूति नहीं थी। घनानंद ने दोनों का योग किया है। इनकी रचनाओं में अनुभूतिमूलक वक्रताएँ विद्यमान हैं। उन्होंने कहीं-कहीं उर्दू-फारसी की वस्तु वक्रता अपनाई है। किंतु वह उनकी गंभीर अनुभूति के अनुकूल नहीं पड़ती थी।

घनानंद ने अपने कवित्त-सवैयों में अपनी प्रेयसी सुजान तथा अपना नाम प्रायः सर्वत्र प्रयुक्त किया है। इन दो में भी प्रधान आनंदघन शब्द है। समस्त रसात्मक तथा भक्ति भावपूर्ण रचनाओं का वही आधार है। सुजान तथा आनंदघन गुणवाचक विशेषण मान लिए गए हैं। ऐसे स्थल कम ही मिलेंगे जहाँ आनंदघन या घनआनंद कवि के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ हो। अपने तथा अपनों के नाम का सौंदर्य के साथ काव्य में प्रयोग घनानंद की काव्य-कला की एक विशेषता मानी जाएगी।

घनानंद की शैली आत्म-निवेदन की है। कवि अपने को प्रिय अथवा प्रेमी मानकर भ.. निवेदन करता है। संस्कृत-प्राकृत के काव्यों में यह शैली दृष्टिगत नहीं होती। फारसी साहित्य में यह शैल.. लित रही है। रीतिकाल के स्वच्छंदधारा के कवियों में घनानंद और आलम ने इस शैली को अपनाया। स्वयं प्रेमी

होने के नाते प्रेमकथा को अपने आप ही कहना इन्हें अच्छा लगा। स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण इन्हें भारतीय समाज की उस मान-मर्यादा की परवाह नहीं थी जिसकी परवाह रीतिमार्गी कवियों ने की थी।

घनानंद ने कवित्त और सवैया छंदों में ही अपनी अधिसंख्य रचनाएँ रची हैं। उन्होंने सवैया छंद के प्रयोग में रुचि की विविधता का प्रदर्शन नहीं किया है। अपनी कोमल लय के कारण सवैया छंद शृंगार वर्णन में विशेष प्रचलित हुआ। घनानंद के अधिसंख्य सवैये अत्यंत कोमल शब्दावली में रचे गए हैं। उनसे संगीत की मधुर गूँज उत्पन्न होती है। उनके सवैयों में नरोत्तम दास तथा मतिराम की सी सरलता और कोमलता मिलती है। घनानंद के कवित्त औरों की अपेक्षा सरल-कोमल तो हैं ही इनके कवित्तों में छंद विन्यास भी उच्च कोटि का है। इन दो छंदों के अतिरिक्त सुमेरु, त्रिलोकी, दोहा, अरल्ल, नाटक आदि छंदों में भी रचनाएँ की गई हैं।

घनानंद की रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग अत्यल्प है। सीधी-सरल शैली में मार्मिक भावो को व्यक्त करने वाले पद्य अधिक हैं। वैसे कवि के जो भाषा संबंधी आदर्श हैं उसमें अलंकारों का स्थान है, पर वे अर्थोपकारक हों। हृदय के भवन में मौन का घूँघट डालकर जो बात बनिता बैठी रहती है वह रस की मणियों तथा पदार्थों के मंजु भूषणों से शोभायमान होती है -

उर भौन में मौन को घूंघट कै दुरि बैठी विराजति बात बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सो सु लसै हुलसै रस रूप मनी।

घनानंद के काव्य में यमक, श्लेष, अनुप्रास, उपमा, सांगरूपक, व्यतिरेक, अनन्वय, संदेह, विनिमय, प्रतीप, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, विरोध, हीनोपमा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। स्पष्ट है कि जिन अलंकारों का उन्होंने प्रयोग किया है वे प्रसिद्ध ही हैं। इस प्रकार के अलंकार सभी के काव्य में आ सकते हैं। इससे कवि की प्रवृत्ति अलंकार निरपेक्ष प्रतीत होती है।

16.7 घनानंद की काव्य-भाषा

घनानंद की दृष्टि में काव्य-कला में भाषा उपेक्षणीय तत्व नहीं है। उसका बड़ा महत्व है। कवि कहता है कि हृदय को छलने का साधन भी अक्षर ही है और उसे तृप्त करने का साधन भी वही है। यद्यपि सत्य अक्षर से दूर है, पर अक्षर ही उसका परिचय कराता है। भाव-मग्न होकर अक्षर की गति जानने पर तत्व बोध हो जाता है -

अच्छरै मन को हरै बहुरि अच्छर ही भावै
रूप अच्छरातीत ताहि अच्छरै बतावै
तच्च बोध बौरानि में अच्छर गति अच्छर लहै।

घनानंद की दृष्टि में शब्द वक्रता के सूक्ष्म श्वास-प्रश्वासों का ही पवन पट है जो अनुराग के रंग में रंगा रहता है। बहरहाल इससे स्पष्ट है कि घनानंद काव्य भाषा के प्रति बेहद सतर्क तथा संवेदनशील व सृजनात्मक थे।

घनानंद के भावों के समान ही उनकी भाषा में भी नवीनता है। उनकी भाषा टकसाली ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा के सबसे स्वच्छ, अमिश्रित तथा प्रवाहपूर्ण रूप का प्रयोग केवल रसखान और घनानंद ही कर सके। इनमें घनानंद की भाषा में लाक्षणिक वैचित्र्य और व्यंजना का सौंदर्य रसखान की अपेक्षा अधिक है। घनानंद ने लक्षणा शक्ति के द्वारा विरोध-वृत्ति को उभारकर भाषा का सौंदर्य कई गुना बढ़ा दिया है। इसी प्रकार उनमें मानवीकरण का प्रयास भी पग-पग पर दीख पड़ता है। इस दृष्टि से उनकी तुलना आधुनिक काल के छायावादी कवियों से की जा सकती है।

घनानंद की भाषा में माधुर्य अप्रतिम है। उनकी रचनाओं में कर्ण-कटु वर्णों का प्रयोग भरसक नहीं मिलेगा। एक ओर वे लोक जीवन के व्यंजक शब्दों का प्रयोग कर अनोखी दीप्ति पैदा करते हैं, दूसरी ओर फारसी के विद्वान होते हुए भी वे अपनी भाषा को फारसी बोझिल नहीं होने देते। उन्होंने मुहावरों और कहावतों के योग से भाषा की व्यंजकता बढ़ा दी है। मुहावरों के प्रयोग की पद्धति निश्चय ही फारसी की प्रेरणा से ग्रहण की है। पर फारसी के मुहावरों की योजना नहीं की, जैसा उर्दू वालों ने

किया। उन्होंने हिंदी के मुहावरों का प्रयोग करके जो चमत्कार उत्पन्न किया है और साथ ही जिस भावना तक सहृदय को पहुँचाया है वह स्थान-स्थान पर दर्शनीय है -

रावरै पेट की बूझि परै नहीं रीझि पचाय कै डोलत भूखे।

पेट की 'बूझ न पड़ना', 'पचाना' और 'भूखे डोलना' तीनों प्रयोग लाक्षणिक हैं।

घनानंद की काव्य-भाषा में व्याकरण व्यवस्था का संघटन पूर्ण रूप से विद्यमान है। बिहारी की भाषा भी व्यवस्थित तथा साहित्यिक है, पर घनानंद जैसी सजीव और लाक्षणिक नहीं है। फिर भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कहना सोलहो आने ठीक है कि बिहारी और घनानंद को मिलाकर ब्रजभाषा का समूचा व्याकरण तैयार किया जा सकता है।

संक्षेप में, भाषा की समृद्धि के जितने भी उपादान होते हैं, वे सब घनानंद की काव्य भाषा में उपलब्ध हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ठीक ही लिखा है कि भाषा के विचार से तो रीतिबद्ध कवियों में से बहुत कम इनकी तुलना में टिक सकेंगे। अंततः घनानंद की कविता के भाव पक्ष और कला पक्ष के विवचेन के पश्चात कहा जा सकता है कि रीतिकाल के राजसी परिवेश में प्रश्रय पाकर भी उन्होंने अपनी कविता को सामंती विलास की बांदी नहीं बनने दिया।

16.8 सारांश

- घनानंद रीतिकाल के एक विलक्षण कवि हैं। उनकी कविता रीतिमार्गी कविताओं से सर्वथा भिन्न है।
- रीतिकालीन काव्यादर्श काव्य के बाह्य रूपों को सँवारने-सजाने के थे। घनानंद के यहाँ अनुभूति पक्ष पर ज़ोर दृष्टिगत होता है।
- रीतिकालीन कविता साहित्यशास्त्र की रूढ़ियों पर अत्यधिक आश्रित है। इसके विपरीत, घनानंद ने स्वकीय अनुभूतियों पर विश्वास किया और अपने हृदय की भोगी हुई पीड़ा को अपनी कविताओं में रूपायित किया।
- घनानंद मूलतः एक प्रेमी कवि थे। उनका प्रेम संबंधी दृष्टिकोण रीतिमार्गीय प्रेम से भिन्न है। वह गार्हस्थिक नहीं है। वह विषम प्रेम है। यहाँ प्रेम व्यथा प्रधान है। यह प्रेम भावात्मक है, शारीरिक नहीं।
- घनानंद की प्रेम-भावना में अतींद्रिय सौंदर्य के रहस्यमय संकेत विद्यमान हैं। उनकी कविता में भौतिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम में विकास होता है। उनकी दृष्टि में मानवीय प्रेम ईश्वरीय प्रेम का ही लघुतम अंश है। सूफियों की भाँति घनानंद ने लौकिक प्रेम में कई स्थानों पर ब्रह्म प्रेम का आभास दिया है। लेकिन फारसी का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी घनानंद ने भारतीय रंग का सर्वथा त्याग नहीं किया है।
- घनानंद की प्रेमानुभूति स्वच्छंद है। उन्होंने प्रिय व्यापार के कृत्रिम रूपों का त्याग किया है। रीतिमार्गी कवि बुद्धि के बल से ही भाव का अनुमान करते थे और उसी के बल से प्रेम के बाह्य रूप विधान का संधान करते थे। घनानंद ने प्रेम को हृदय की शुद्ध, निश्छल भावधारा माना है, बुद्धि का उसमें गौण स्थान है।
- घनानंद की रचना अभिधा में कम लक्षणा और व्यंजना में अधिक है। उनकी शैली में वक्रता तथा ऋजुता दोनों दृष्टिगत होती है। शैली का आंतरिक रूप भाव-प्रधान है, विभाव-प्रधान या वस्तु-प्रधान नहीं। वह आत्म-निवेदन की शैली है।
- घनानंद ने कवित्त और सवैयों में ही अपनी अधिसंख्य रचनाएँ रची हैं। अलंकारों का प्रयोग अत्यल्प दृष्टिगत होता है।
- घनानंद की काव्य भाषा टकसाली ब्रजभाषा है। उसका माधुर्य अप्रतिम है। मुहावरों और कहावतों के योग से भाषा की व्यंजकता बढ़ गई है। व्याकरण व्यवस्था का संघटन पूर्ण रूप से विद्यमान है।

16.9 अभ्यास/प्रश्न

1. घनानंद की कविता में वर्णित प्रेम रीतिकाल के अन्य कवियों से किन मायनो में अलग है।
2. घनानंद के काव्य-कौशल और भाषा पर विचार कीजिए।